नवंबर १९९३ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

धम्मवाणी

तयो रोगा पुरे आसुं, इच्छा अनसनं जरा।
पसूनं च समारम्भा, अट्ठानवुतिमागमुं॥

पहले केवल तीन रोग थे; इच्छा, भूख और बुढ़ापा। पशुवध से अट्ठावनवे [रोग] हो गए।

सुत्तनिपात, ब्राह्मण धम्मिक सुत्त - २८

ऐसे थे भगवान

असीम करुणानिधान

[१]

जब कोई व्यक्ति मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा इन चारों ब्रह्मबिहारों का अभ्यास कर पहले से चौथे ध्यान की साधना में परिपुष्ट हो जाता है तो उसके मन से द्वेष दूर होता है। राग दूर होता है तो ही मन से द्वेष दूर होता है। क्योंकि यदि राग रहेगा तो उसके परिणाम स्वरूप द्वेष जागेगा ही। अतः ऐसे व्यक्ति के राग और द्वेष दोनों दूर हो जाने के कारण वह यहीं इसी जीवन में ब्राह्मी जीवन जीने लगता है।

ऐसा व्यक्ति जब ध्यान-साधना में और आगे बढ़ता है याने पांचवे से आठवें ध्यान में परिपुष्ट हो जाता है तो उसका मन अधिक गहराइयों तक निर्मल हो जाता है। राग और द्वेष अधिक गहराइयों तक दूर हो जाते हैं। वह वीतराग और वीतद्वेष हो जाता है। ऐसी अवस्था में उसका ब्राह्मी स्वभाव भी परिपुष्ट हो जाता है। उसकी मैत्री और करुणा अधिक बलवान हो जाती है।

परंतु आठ ध्यानों की समापत्तियों से संपन्न व्यक्ति भवाग्र अरूप ब्रह्मलोक का अधिकारी हो जाने पर भी, वीतराग और वीतद्वेष हो जाने पर भी, वीतमोह नहीं हो पाता। हो सकता है किसी परंपरागत दार्शनिक मान्यता के प्रति उसका अभिनिवेश बना रहने के कारण, जो सर्वथा असत्य है उसे सत्य मानकर वह अविद्या में पड़ा हो। यदि ऐसा है तो उसके सारे संस्कार अभी नहीं कटे। अंतर्मन की तलस्पर्शी गहराईयों में अंतःशायी सुषुप्त संस्कार दबे पड़े ही हैं। ऐसी अवस्था में उसकी वीतरागता और वीतद्वेषता स्थाई नहीं होती। परंतु जो इन आठ ध्यानों से आगे बढ़कर इन अतःशायी संस्कारों का सर्वथा उत्खनन कर, इंद्रियातीत निर्वाण का साक्षात्कार कर लेता है, उसकी अविद्या सर्वथा दूर हो जाती है। वह सभी दार्शनिक मान्यताओं के बंधनों से पूर्णतया मुक्त हो जाता है। क्योंकि स्थूल से सूक्ष्मता की ओर बढ़ते हुये, इंद्रिय जगत की संपूर्ण सच्चाइयों का अनुभव करते हुये वह इंद्रियातीत परम सत्य का साक्षात्कार कर लेता है। अतः उसके लिए कोई मान्यता मान्यता नहीं रहती। वह जान्यता की सच्चाई का जीवन जीता है, जहां कल्पनाजन्य मान्यता के लिए कोई अवकाश नहीं रह जाता। ऐसा व्यक्ति वीतराग और वीतद्वेष ही नहीं, वीतमोह भी हो जाता है। उसकी भवनेत्री कट जाती है। उसका पुनर्जन्म नहीं होता। ऐसी अवस्था को पहुँचा हुआ व्यक्ति असीम करुणा से भर उठता है। उसका सारा शेष जीवन करुणा से सतत ओतप्रोत रहता है। ऐसा व्यक्ति अरहंत होता है, सम्यक संबुद्ध होता है। शाक्यमुनि ऐसे ही अरहंत थे, सम्यक संबुद्ध थे। पैंतीस वर्ष की अवस्था पूरी होने पर उन्होंने अरहत्व प्राप्त किया, सम्यक संबोधि प्राप्त की, तदनंतर उनके जीवन के शेष बचे पैंतालीस वर्ष का एक-एक दिन, एक-एक मुहूर्त, एक-एक पल महाकरुणा से अभिसिंचित रहा। मानो करुणा बुद्ध के रूप में मूर्तिमंत हो उठी, जीवंत हो उठी, प्राणवंत हो उठी। मानो भगवान बुद्ध के रूप में करुणा का व्यक्तिकरण हुआ। भगवान बुद्ध के व्यक्तित्व में करुणा रच पच गयी।

जैसे एक-एक व्यक्ति के प्रति उनकी करुणा उमड़ी, वैसे ही पीड़ित प्राणियों के समूह के प्रति भी। व्यक्ति-व्यक्ति को दुःख के बाहर निकालने के लिए उन्होंने शुद्ध धर्म की साधना सिखायी जो कि सार्वजनीन और सार्वकालिक होने के साथ-साथ सांप्रदायिकता के बाड़े-बंधन से दूर थी, नैसर्गिक नियमों पर आधारित थी; अतः वैज्ञानिक थी और आशुफलदायिनी थी। परंतु उस समय समाज में अनेक प्राणियों के समूह पर भीषण अत्याचार हो रहा था और वह भी धर्म के नाम पर। इसे देखकर उनका हृदय पिघला और इन दूषणों को दूर करने के लिए उन्होंने आजीवन अथक परिश्रम किया।

रक्त-रंजित यज्ञ

समाज के दुर्भाग्य से उन दिनों यज्ञों में पशु-बलि का विधान बड़ा प्रबल हो उठा था। कभी गृहस्थ को अधिक परिग्रह से रोकने के लिए यज्ञ हुआ करते थे। राजाओं के राज्य-कोष में और धनियों के कोष्ठागार में जब अत्याधिक अन्न-धन एकत्र हो जाता था तो अभावग्रस्त लोगों में उसके सम-विभाग किए जाने के लिए यज्ञ एक माध्यम होता था, बहाना होता था। परंतु स्वार्थी पंडे-पुजारियों की नासमझी के कारण बिगड़ते-बिगड़ते वह एक थोथा कर्मकांडमात्र ही बना रह गया। इतना ही नहीं बल्कि निरीह पशुओं की हत्या के लिए एक बृहत-कत्लखाना भी हो गया।

उन दिनों के सुरक्षित साहित्य में हम देखते हैं कि राजाओं-महाराजाओं अथवा गृहस्थों द्वारा आयोजित एक-एक विशाल यज्ञ में सैकड़ों की तादाद में मूक निरपराध बैल-गायें, बछड़े-बछड़ियां, भेड़-बकरियां और मुर्गे-मुर्गियां आदि कत्ल किए जाते थे। धर्म का पावन स्थल किस प्रकार बूचड़खाने का सा दृश्य उपस्थित करता होगा, उसकी कल्पनामात्र से हृदय कांप उठता है। एक साथ इतने प्राणियों की हत्या करना सरल नहीं होता। आखिर यजमान और पुरोहित कर्मकांड की पूर्ति के लिए प्रतीक स्वरूप एक-एक पशु की हत्या कर लेते होंगे, बाकी इतने पशुओं की एक साथ हत्या करना अपने आप में एक कठिन काम होता होगा। गांव-नगर में कसाई भी कितने मिल जाते होंगे? अतः संभावना इसी बात की है कि यजमान राजा के अथवा धनी गृहस्थ के नौकर-चाकरों

से, क्रीत-दासों से यह जघन्य कार्य जबरन कराया जाता होगा। तभी हम ऐसे वर्णन पढ़ते हैं कि नौकर-चाकर अश्रुमुख होकर यज्ञ में काम कर रहे हैं। जो कसाई नहीं है वह कसाई का जघन्य काम प्रसन्नचित्त से कैसे कर सकेगा?

सचमुच यज्ञ की परंपरा में पुशु-बलि की यह प्रथा एक कलंक बन गयी थी। इन निरीह निरपराध पशुओं के प्रति तो भगवान की करुणा जागी ही, उनकी करुणा जागी उन गुमराह हुए यजमानों के प्रति भी और उन नासमझ पुरोहितों के प्रति भी। उन्होंने यजमानों और पुरोहितों दोनों वर्ग के लोगों को करुणचित्त से धर्म सिखाया। यजमानों को समझाया कि पूर्वकाल में सोलह प्रकार से परिष्कृत यज्ञ होते थे, जिनमें जीवहत्या का नामोनिशान नहीं होता था। धीरे-धीरे यज्ञ करवाने वाले यजमानों को शुद्ध यज्ञ की महत्ता समझ में आने लगी और वे इस दूषित कर्मकांड से मुँह मोड़ने लगे। भगवान के जीवनकाल में इस प्रकार की अनेक घटनाएं हमारे सामने आती हैं जैसे कि कुटदंत ब्राह्मण गृहस्थ की यज्ञ-कथा।

कुटदंत ब्राह्मण को मगधनरेश बिंबिसार ने खाणुमत नामक ब्राह्मण-ग्राम दान में दे रखा था। यह घनी आबादी वाला उपजाऊ ग्राम था। कुटदंत ब्राह्मण को इस ग्राम से प्रचुर आमदनी होती थी, इस कारण वह उन दिनों का एक धनाढ्य ब्राह्मण गृहस्थ था। एक बार उसने एक महान यज्ञ का आयोजन किया। इस निमित्त बलि के लिए सैंकड़ों गाय, बैल, बछड़े-बछड़ियां, भेड़-बकरियां यज्ञ-स्तभ के पास एकत्र कर लीं गईं।

संयोग से उसी समय भगवान बुद्ध चारिका करते हुए खाणुमत ब्राह्मण-ग्राम पहुँचे। तब तक उनकी प्रसिद्धि गंगा-जमुनी दोआबे के सभी राज्यों में, राज्यों के जनपदों में, जनपदों के नगर-नगर में, ग्राम-ग्राम में खूब फैल चुकी थी। लोग उनके दर्शनों के लिए लालायित रहते थे। क्योंकि आम लोगों को इस बात का विश्वास हो गया था कि वे शुद्ध-बुद्ध महापुरुष हैं और ऐसे महापुरुषों के दर्शन कल्याणकारी होते हैं। अतः वे जहां जाते, समूह के समूह लोग उनसे मिलने चले आते। खाणुमत ब्राह्मण-ग्राम में भी यही हुआ। उनसे मिलने के लिए लोगों की भीड़ उमड़ पड़ी। खाणुमत ब्राह्मण-ग्राम का स्वामी कुटदंत भी वहां जा पहुँचा।

क्योंकि कुटदंत के यहां महान यज्ञ का प्रसंग था, अतः उसने भगवान से यज्ञ के बारे में जानकारी प्राप्त करनी चाही। उसने यह सुन रखा था कि भगवान पूर्वकाल में होने वाले शुद्ध यज्ञों की व्याख्या करते हैं। अतः उसने भगवान से इस बारे में जानना चाहा। भगवान ने अत्यंत करुणचित्त से प्राचीन युग के यज्ञों के बारे में बताया, जिसमें यज्ञ, यज्ञमान और याज्ञिक की शुद्धता का विवरण था। ऐसे यज्ञों में पशु-बलि जैसा कुकृत्य नहीं हुआ करता था। यह सुनकर कुटदंत ब्राह्मण अत्यंत प्रभावित हुआ। उसने निरीह पशुओं को अभयदान देकर उन्हें बंधन से मुक्त किया और बोला – "ये हरी-हरी घासें चरें, ठंडा-ठंडा पानी पिएं, ठंडी-ठंडी बहती हवाओं में उन्मुक्त विचरें।"

भगवान की कल्याणी वाणी सुनकर हिंसक यज्ञ करवाने वाला ब्राह्मण कुटदंत जैसे बदला, वैसे ही अनेक यजमान बदले। और इसी प्रकार ब्राह्मण पुरोहित भी बदले। ब्राह्मणों के पुरोहित वर्ग से भगवान का कोई बैर तो था नहीं। उनके मन में इनके प्रति भी अपार करुणा ही थी, जिससे कि वे इस गिरी हुई हालत से ऊपर उठें। अतः जहां जब अवसर मिला, उन्होंने बड़े प्यार से उन्हें समझाया कि पूर्वकाल के ब्राह्मण कितने शील-सदाचारी थे, त्यागी और अपरिग्रही थे, ध्यानी और तपस्वी थे; पर किस प्रकार उनका नैतिक पतन होने लगा और वे हिंसक यज्ञों के जन्मदाता बन गये तथा इन जघन्य कर्मों में उलझ कर अपनी और अपने यजमानों की हानि करने लगे। भगवान ने समझाया कि पुरातनकाल के सदाचारी ब्राह्मण धार्मिक रीति से चावल, घी, तैल, शयन, वस्त्र आदि ला कर यज्ञ-संपादन करते थे। उन यज्ञों में किसी प्राणी का बध नहीं करते थे।

और फिर गायों की महत्ता बताते हुए भगवान समझाते थे – माता-पिता, भाई-बंधुओं की भांति गायें हमारी परम मित्र हैं। उनके बछड़े हमारे खेतों में हल चलाते हैं, उनके गोबर से खेतों में अन्नदायिनी, औषधिदायिनी वनस्पतियां पैदा होती हैं। गायें हमारे लिए अन्नदायिनी हैं बलदायिनी हैं, तेजस्वितादायिनी हैं और सुखदायिनी हैं। इन बातों को समझते हुए उन दिनों के ब्राह्मण गायों की हत्या नहीं करते-करवाते थे। गायें भेड़ों की तरह निरीह होती हैं। वे अपने पावों अथवा सींगों से किसी की हत्या नहीं करतीं। वे हमें घड़ा भर-भर दूध देती हैं।

भगवान ने बताया कि उन सदाचारी ब्राह्मणों का जब अधःपतन होना शुरू हुआ तो वे अपरिग्रही नहीं रहे। भिन्न-भिन्न प्रकार के यज्ञ करवा कर यजमान राजा से भिन्न-भिन्न प्रकार की सामग्रियां दान में प्राप्त कर परिग्रही होते चले गये। शनैः-शनैः उनका लोभ बढ़ता गया, उनकी तृष्णा बढ़ती गयी। वे नए-नए मंत्र रच कर, राजा को उनका महातम्य बता-बता कर, नए-नए यज्ञ करवाने लगे और प्रभूत धन-संपदा अर्जित करने लगे।

आगे जा कर उनका घोर अधःपतन हुआ, जबकि उन्होंने गायों को भी एक भोग्य वस्तु मान कर राजा से 'गो-मेध यज्ञ' करवाने शुरू किए। इसके कारण अनेक शत-शहस्त्र गौओं का बध हुआ।

जब पहले-पहल गो-हत्या हुई तो देव-पितर और इंद्र ही नहीं, बल्कि असुर और राक्षस भी यह देख कर दुःखी हुए और चिल्ला उठे –

हाय! अर्धम हुआ, जो गायों पर शस्त्र पड़ा।

भगवान ने लोगों को समझाया कि पुरातन काल में इच्छा, भूख और जरा –यही तीन रोग थे। परंतु पशु-बलि शुरू होने पर जनता में अट्ठानबे प्रकार के रोग आरंभ हो गये। यों धर्म के नाम पर जो अधर्म चल पड़ा, उससे लोगों का बड़ा अमंगल हुआ।

उन्नति के चरम शिखर पर पहुँचे हुए शील-सदाचारी ब्राह्मणों के ऐसे घोर अधःपतन का वर्णन सुनकर अनेक समझदार पुरोहित हिंसक यज्ञों से अपना हाथ खैंचने लगे। भगवान की असीम करुणा का फल प्रत्यक्ष आने लगा। उनके जीवन काल में ही हत्यारे यज्ञ कम होने लगे और आगे चलकर बिल्कुल बंद हो गये। सदियों से हिंसक यज्ञ सर्वथा बंद हो जाने के कारण आज तो हमें विश्वास भी नहीं होता कि हमारे पुरखे कभी धर्म के नाम पर ऐसे अधर्म में रत रहते थे।

भगवान की शिक्षा के कारण ही देश में गऊ माता की तरह पूजी गयी। इसी के परिणाम-स्वरूप मांसाहारी पड़ोसी ब्रह्मदेश में गोमांस को 'अमेदा' याने 'माता का मांस' कह कर उसका बहिष्कार किया जाता है।

भगवान की करुणा इस दिशा में पूर्णतया सफल हुई। समाज का अपार मंगल हुआ।

मंगल मित्र,
स. ना. गो.